हम सब ही यहाँ कहीं और से आए हुए हैं: सैंतीसवाँ न्यूज़लेटर (2026)

लियुमिन तू (शरणार्थी) से एक अंश, जियांग झाओहे (चीन), 1943.

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

वैश्विक उत्तर से दक्षिण तक, आज हम कहीं भी जाएँ, आप्रवासियों के ख़िलाफ़ मुखर आवाज़ें सुनने को मिलती हैं। यह अब सार्वजनिक विमर्श का ऐसा अंग बन गया है जिससे चाहकर भी बचा नहीं जा सकता। वैश्विक उत्तर में यह बहस ख़ासतौर से ज़हरीली हो चुकी है, जहाँ एक **ख़ास क़िस्म के चरम दक्षिणपंथ** ने इसे अपना प्रमुख आधार बना लिया है। दिसंबर 2025 में संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रम्प ने यूएस में सोमाली आप्रवासियों को 'कचरा' **कहा** और साथ ही कहा कि उन्हें 'वहीं वापस भेज दिया जाए जहाँ से वे आए हैं'। ट्रम्प के उपराष्ट्रपति जेडी वैन्स ने आप्रवासियों को यूएस और यूरोप, दोनों के लिए 'सबसे बड़ा ख़तरा' **कहा** है। ब्रिटेन में यूके के प्रधानमंत्री केर स्टार्मर ने मई 2025 में **कहा** था कि उनका देश 'अजनबियों का टापू बन जाने' का ख़तरा झेल रहा है। लगभग यही शब्द उसी साल ऑस्ट्रेलिया के गृहमंत्रालय के 'छाया मंत्री' (विपक्ष की ओर से गृह मंत्रालय की नीतियों आदि का विश्लेषण और आलोचना करने वाले वरिष्ठ सांसद) ऐंड्रू हेस्टी ने भी **दोहराया**: 'हमें अपने ही घर में अजनबी होने का अहसास होता है'।

वैश्विक दक्षिण भी चर्चा से अनछुआ नहीं है। दक्षिण अफ़्रीका में ज़ेनोफोबिया (विदेशियों के प्रति भय या घृणा) की भावना बहुत ज्यादा दिखाई दे रही है। ऑपरेशन दुदुला (2021) और मार्च एंड मार्च (2024) जैसे आप्रवासी-विरोधी गुट अचानक से उभरे। इनके पास इतना धन है कि ये आप्रवासी-विरोधी बलवा फैला सकते हैं। इन गुटों ने उन दक्षिण अफ़्रीकियों में *▯▯▯▯▯▯▯▯▯ ▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯▯* ('विदेशियों को जाना होगा') जैसे नारे लोकप्रिय कर दिए हैं जो रंगभेदी शासन के बाद के दौर में हाशिए पर धकेल दिए गए। समाज के इन हिस्सों ने अपनी सामाजिक-आर्थिक परेशानियों के लिए अपने पड़ोसियों को ज़िम्मेदार ठहराया है – वे ग़रीब आप्रवासी जो बोत्स्वाना, लेसोथो, मोज़ाम्बिक और ज़िम्बाब्वे जैसे दक्षिण अफ़्रीका के पड़ोसी देशों से वहाँ आते हैं। इन आप्रवासी-विरोधी गुटों ने आप्रवासियों को देश छोड़ देने की धमकियाँ और अंतिम तारीख़ दी हैं। इससे घबराकर ये आप्रवासी या तो सुरक्षित जगहें खोज रहे हैं या डर के मारे दक्षिण अफ़्रीका छोड़कर जा रहे हैं।

इस ज़ेनोफोबिया का बढ़ना इस आम धारणा को दर्शाता है कि मेहनतकश वर्ग की बदहाल जीवन-स्थितियों के लिए पूँजीवाद की संरचनात्मक विशेषताएँ नहीं, बल्कि सीमित संसाधनों के लिए आप्रवासियों के साथ होने वाली प्रतिस्पर्धा जिम्मेदार है। यह दावा किया जाता है कि गरीबी से जूझ रहे और अधिकारविहीन आप्रवासियों ने किसी तरह राज्य को खोखला कर दिया है और रोज़गार के बाज़ार में स्थानीय लोगों के लिए जगह कम कर दी है, जिसके कारण देश में जन्मे कामगार स्थिर और सम्मानजनक जीवन नहीं जी पा रहे हैं।

माँ और बच्चा भागते हुए, जोसेफ हरमन (पोलैंड), 1942.

आप्रवासियों से जुड़े इस विमर्श में बहुत ज्यादा ग़लतियाँ, अतिशयोक्तियाँ और कड़वाहट भरी है। ज़ेनोफोबिया के प्रवर्तक प्रवास के पैमाने और भूगोल को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं, और इन्हीं के आधार पर पूरे विमर्श में ज़हर बो देते हैं। यह विकृति तीन तरह से काम करती है :

1. **अतिरंजित पैमाना**: अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासियों की संख्या दुनिया की आबादी का सिर्फ़ **3.6%** है। ज्यादातर आप्रवासी अपने वतन से बाहर नहीं जाते, क्योंकि वे गाँव से शहरों या एक शहर से दूसरे शहर की ओर ही प्रवास करते हैं। इसलिए देश के

अंदर ही अपनी जगह छोड़ने वालों को अगर गिना जाए, तो आप्रवासियों या विस्थापितों का एक चौथाई हिस्सा ही वैश्विक दक्षिण से वैश्विक उत्तर की ओर जाता है, यह जानकारी मुझे अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन संगठन के एक अधिकारी ने दी।

2. **अतिरंजित भूगोल**: ज़ाहिरी वजहों से पश्चिमी मीडिया भूमध्य सागर, यूएस-मेक्सिको सीमा और इंग्लिश चैनल के ज़रिए होने वाले प्रवास पर केंद्रित ख़बरें दिखाता है। इसकी वजह से प्रवास एक ऐसा मुद्दा लगता है जिसका बोझ वैश्विक उत्तर पर ही है। लेकिन सच्चाई यह है कि अधिकतर आप्रवासी अपने देश के अंदर ही या आसपास के देशों में ही जाते हैं। शरणार्थियों की सुरक्षा का भारी बोझ दरअसल दक्षिण के ग़रीब देशों पर **पड़ता** है, न कि उत्तर के अमीर देशों पर।
3. **अतिरंजित भाषा**: वे लोग जो आप्रवासियों के ख़िलाफ़ भावनाएँ भड़काते हैं, लगभग हमेशा ही इस बात पर ज़ोर देते हैं कि वे 'ग़ैर-क़ानूनी' आप्रवासियों के ख़िलाफ़ हैं न कि 'क़ानूनी' ढंग से आए लोगों के। व्यावहारिक रूप से, 'ग़ैर-क़ानूनी आप्रवासी' नाम की यह ख़तरनाक श्रेणी ही प्रवास के बारे में लोगों की आम समझ को आकार देती है। शरणार्थी, शरण चाहने वाले, बिना काग़ज़ात वाले मज़दूर,छात्र, परिजन, अस्थाई मज़दूर और आप्रवासी तक जो क़ानूनन किसी देश में आते हैं, उन्हें भी 'ग़ैर-क़ानूनी' मान लिया जाता है या कम-से-कम वे संदेह घेरे में तो आ ही जाते हैं। 'ग़ैर-क़ानूनी' विशेषण 'आप्रवासी' के साथ जुड़कर उसका अर्थ तैयार करता है और उस पर हावी हो जाता है। इसलिए आप्रवासी के साथ ग़ैर-क़ानूनी न लगे होने के बावजूद इसकी छाया हमेशा उससे जुड़ी रहती है। आप्रवासी होना भर ही अपने आप में अतिक्रमण बन जाता है।

बेग्ली (शरणार्थी), जेकाब्स काज़ाक्स (लातविया), 1917.

अमीर देश, अधिकतर वैश्विक उत्तर में स्थित, आप्रवासियों का सस्ता श्रम तो चाहते हैं लेकिन उनका सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और राजनीतिक भागीदारी नहीं। वैश्विक उत्तर के प्रमुख आर्थिक क्षेत्र कृषि, निर्माण, लॉजिस्टिक्स और देखभाल के काम आदि आप्रवासियों के श्रम पर निर्भर हैं। ज़ेनोफोबिया की बहस और प्रतिबंधात्मक क़ानूनी प्रणालियाँ

एक ऐसा माहौल तैयार करती हैं जिससे निर्वासन के डर और क़ानूनी अधिकार तथा सामूहिक सौदेबाज़ी के निषेध के ज़रिए इन मज़दूरों को अनुशासन में रखा और इनका शोषण किया जाता है। इस सबके बावजूद इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि आप्रवासी जहाँ रहते हैं वहाँ के सत्ताधारी वर्ग के लिए संपदा उत्पन्न करते हैं। उनके द्वारा कमाकर अपने **देश भेजे गए धन** से उनके परिवार भी चलते हैं। प्रवास और अर्थव्यवस्था से जुड़ा विमर्श एक राजनीतिक बहस के तौर पर गडमड और अस्पष्ट है।

1. **आर्थिक मत**: आप्रवासी यकीनन आवास, स्कूलों, यातायात, और स्वास्थ्य सेवाओं की फ़ौरी माँग पैदा करते हैं, ख़ासतौर से जब किसी ख़ास क्षेत्र की ओर प्रवास के केंद्रित होने की स्थिति में। लेकिन आप्रवासी काम भी करते हैं, उत्पादन करते हैं, कर देते हैं और उन क्षेत्रों को भी बचाए रखते हैं जो श्रम की कमी से जूझ रहे होते हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) **दिखाता** है कि आप्रवासी श्रम बाजारों, सार्वजनिक वित्त, रोज़गार, और नौकरी सृजन में योगदान करते हैं लेकिन इनके लाभ और लागत असमान रूप से वितरित होते हैं। 1980 और 2018 के बीच चौंतीस ओईसीडी देशों में कराए गए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ़) के एक विस्तृत अध्ययन में यह **पाया** गया कि कुल रोज़गार में आप्रवासियों के 1% प्रवाह से पाँच सालों में आर्थिक उत्पादन में लगभग 1% वृद्धि हुई और इस वृद्धि का दो-तिहाई भाग उच्च श्रम उत्पादकता से आया था। ग़ौरतलब है कि इस अध्ययन में ऐसा कोई सबूत सामने नहीं आया जिससे साबित होता हो कि आप्रवासियों के आने से स्वदेशियों को रोज़गार मिलने में कमी आई हो।
2. **श्रम से जुड़ा प्रश्न**: मालिक कभी-कभी काम की स्थितियों को ख़राब करने या मज़दूर संगठनों को कमज़ोर करने के लिए अनिश्चित आप्रवासी श्रम का उपयोग करते हैं। हालाँकि, **समस्या** आप्रवासी श्रमिक नहीं है, बल्कि मालिक की वह शक्ति है, जो श्रमिकों को उनकी कानूनी स्थिति के आधार पर बाँटती और विभाजित करती है। मज़बूत, बेहतर-संगठित मज़दूर संगठन श्रमिकों को इन विभाजनकारी रणनीतियों का विरोध करने, मज़दूरी और काम की स्थितियों में सुधार करने, तथा आवास, कानूनी और सामूहिक सौदेबाजी अधिकारों को सुरक्षित करने में मदद कर सकते हैं।

शरणार्थी, परितोष सेन (भारत), 1946.

आप्रवासियों के विरुद्ध विमर्श में सबसे स्पष्ट ज़िम्मेदारी नवउदारवाद की है। आप्रवासी ऐसे समाजों में पहुँचते हैं जो पहले से ही सरकारी ख़र्च में कटौती और ऋण से बर्बाद हो चुके हैं। आवास की समस्या, बेरोज़गारी के निरंतर दौर,

मानसिक बीमारियाँ और नशीले पदार्थों के सेवन जैसी समस्याएँ आप्रवासी नहीं पैदा करतीं। ये सब तो पूँजीवादी समाजों के लक्षण हैं जहाँ चंद लोगों के मुनाफ़े को व्यापक जनता की भलाई से ऊपर रखा जाता है। सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण, नगर निगमों के बजटों में कटौती, और नतीजतन राज्य की क्षमता तथा समाज कल्याण योजनाओं का बर्बाद हो जाना, ऐसी नवउदारवादी नीतियाँ हैं जिन्हें अमीरों और संपत्ति-धारी वर्गों की सेवा के लिए लागू किया गया था। जिन राजनीतिक दलों ने इन नवउदारवादी नीतियों को लागू किया और इस तरह उनके कारण पैदा हुई सामाजिक उथल-पुथल के लिए ज़िम्मेदार हैं, अब आप्रवासियों को बलि का बकरा बना रहे हैं।

यहाँ से कहाँ ?, इस्माइल शम्मौत (फ़िलिस्तीन), 1953.

आप्रवासियों के खिलाफ़ किया जाने वाला प्रचार दुनिया भर में अरबों लोगों के सामने मौजूद सामाजिक संकट के वास्तविक कारणों को छिपाने का काम करता है। हमारे समय में होने वाला बेहिसाब सैन्य खर्च और विनाशकारी युद्ध, नाटो+ गुट की अवज्ञा करने वाले देशों पर लगाए जाने वाले कठोर प्रतिबंध, उन देशों पर थोपी गई कर्ज़ की गुलामी जो अविकास के चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं, जलवायु परिवर्तन की भारी कीमत, ज़मीन से बेदखली और लोगों की आजीविका का विनाश—इनमें से किसी का कारण प्रवासन नहीं है। इनके पीछे पूँजीवाद और साम्राज्यवाद हैं, जो दुनिया को मुनाफ़े के लिए नष्ट करना तो पसंद करते हैं, लेकिन उसे बेहतर बनाने की कोशिश नहीं करते। वास्तव में, प्रवासन भी पूँजीवादी साम्राज्यवाद का ही नतीजा है, जो युद्ध, कर्ज़, प्रतिबंधों और शोषण के ज़रिए वैश्विक दक्षिण में जीवन के बुनियादी आधार को नष्ट करता है।

दुर्भाग्य से, आप्रवासियों के खिलाफ़ लगातार चलाए जा रहे प्रचार का असर इतना व्यापक हो गया है कि दक्षिण अफ्रीका के सोवेटो में एक अलग-थलग और हताश कामगार के लिए किसी स्पाज़ा दुकान (छोटी किराना दुकान) को जला देना, अपने देश में ज़मीन के बेहद असमान स्वामित्व के क्रूर सच पर विचार करने से कहीं आसान हो गया है। दक्षिण अफ्रीका में श्वेत लोगों की आबादी लगभग 7% हैं, लेकिन वे 72% फार्म और कृषि भूमि के **मालिक** हैं; जबकि दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत लोगों की जनसंख्या लगभग 82% है, लेकिन उनके पास केवल 4% भूमि है। भूमि सुधार की कल्पना करना, बोत्सवाना के एक ग़रीब आप्रवासी दुकानदार की दुकान जलाने की तुलना में बहुत कठिन और जटिल है। ज़ेनोफोबिया की भ्रम पैदा करने वाली बयानबाज़ी के खिलाफ़ कामगार वर्ग को सही समझ और स्पष्ट दृष्टि से लैस करना आज वामपंथ के सामने मौजूद कामों में से एक है। अपनी ओर से, दक्षिण अफ्रीकी कम्युनिस्ट पार्टी ने ज़ेनोफोबिया के खिलाफ़ और एकजुटता के पक्ष में स्पष्ट और दृढ़ **रुख** अपनाया है।

जीवित रहने की उम्मीद, रज़िएह घोलामी (अफ़ग़ानिस्तान), 2019.

महान कैरेबियाई-ब्रिटिश कवि बेंजामिन ज़ेफनिया ने अपना अधिकांश जीवन अपने वंश और विस्थापन पर चिंतन करते हुए बिताया। दो दुनियाओं के बीच जीते हुए, उन्होंने उन अत्यंत मानवीय संघर्षों और अकेलेपन तथा अलग-थलग होने की भावनाओं को समझा, जो एक आप्रवासी होने के साथ आती हैं। अपनी कविता 'We Refugees' (2000) [हम शरणार्थी] में, ज़ेफनिया ने ज़ेनोफोबिया की अतार्किकता और अमानवीयता को गर्मजोशी और सरलता के साथ दर्शाया है :

> हम सब शरणार्थी हो सकते हैं
> बाज़ दफ़ा इसमें बस इक दिन लगता है,
> बाज़ दफ़ा बस एक हाथ मिलाना भर
> या काग़ज़ पर किया इक दस्तख़त।
> हम सब शरणार्थी हो सकते हैं
> कोई आसमान से नहीं टपकता,
> कोई नहीं जिसका अपना एक संघर्ष न हो,
> और हम क्यों जिएँ डर के साये में
> किसी आसमानी या दुनियावी परेशानी के ?
> हम सब ही यहाँ कहीं-न-कहीं से आए हुए हैं।

स्नेह सहित,

विजय